महाभारत के श्रीकृष्ण

डॉ. लक्ष्मी नारायण धूत

म हा भा र त के श्री कृ ष्ण

डॉ. लक्ष्मी नारायण धूत

महाभारत के श्रीकृष्ण

संस्करण : २०२०
मूल्य : १५०
लेखक : डॉ. लक्ष्मी नारायण धूत
प्रकाशक : पुनीत एडवरटाइज़िंग प्राइवेट लिमिटेड

लेखक परिचय
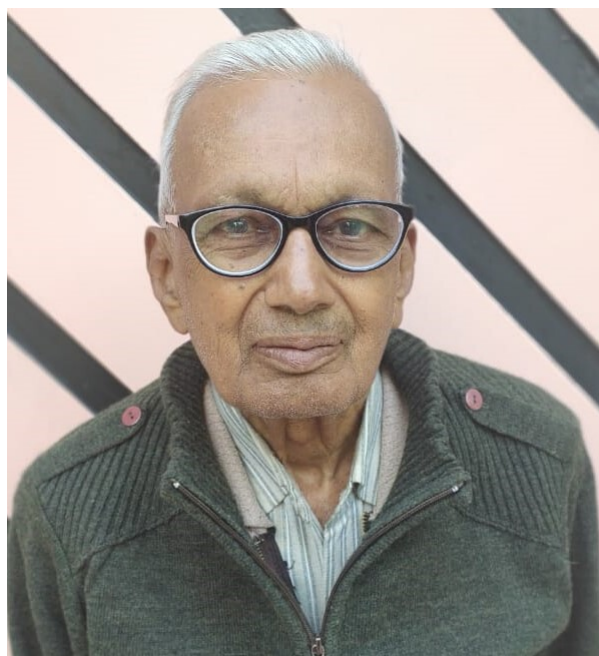
डॉ. लक्ष्मी नारायण धूत

मोबाइल : +91 8871420820
ईमेल: lndhoot @gmail.com
पता: ३ श्रीपुरम, ओल्ड पलासिया, इंदौर, भारत

कार्य: लेखक, समाजसेवी, सेवानिवृत्त प्राचार्य (स्नाकोत्तर महाविद्यालय)

शिक्षा: बी.एस.सी, एम.एस.सी (भौतिक शास्त्र),एम.एस.सी(रसायनशास्त्र), पी.एच.डी.

प्रकाशन: दैनिक भास्कर, नईदुनिया एवं अन्य दैनिक समाचार पत्रों में १५ बड़े लेख, तुलसी मानसभारती, ब्रह्मात्मशक्ति आदि, विभिन्न पत्रिकाओं में प्राचीन आध्यात्मिक ग्रंथों की विज्ञान पोषित विवेचना वाले १०० से अधिक लेख। हिन्दू धर्म का मूल स्वरुप, महाभारत के पात्रों का आध्यात्मिक स्वरुप, गीता एक सूत्र में, गीता में प्रकृति-पुरुष, प्रकाशित पुस्तकें।

अनुक्रमणिका

भूमिका

भारत के प्राचीन साहित्य में श्रीकृष्ण को कहीं ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में, कहीं लीला पुरुष के रूप में तो, कहीं भगवत् सत्ता के अवतार रूप में वर्णित किया गया है। इसके मूल में भारतीय मनीषियों की यह आधारभूत दृष्टि रही है कि जगत की उत्पत्ति, संचालन और संहार की चक्रीय गतिविधियों के कारण रूप में जो मूल सत्ता है उसकी पहचान हम अपने व्यक्तित्व के तीन स्तरों- शरीर, मनस (मन-बुद्धि) और आत्मा अर्थात् आधिभौतिक, आधिमानसिक तथा आध्यात्मिक स्तरों पर कर सकते हैं, और इस कारण से ही अवतारी महापुरुषों के उक्त तीन रूपों का वर्णन हम संबंधित ग्रंथों में पाते हैं।

कृष्ण कथा संबंधित यहां प्रस्तुत हमारे इन लेखों में उक्त तीनों रूपों की झलक पाठक को देखने को मिलेगी जिससे उस मूल सत्ता के वास्तविक स्वरूप का कुछ आभास पाठक को मिल सकेगा ऐसी हमारी धारणा है।

महाभारत के श्रीकृष्ण पूर्ण जाग्रत और सक्रिय आत्मतत्व के मूर्त रूप

छांदोग्योपनिषद में उल्लेखित (3.17.6) ऐतिहासिक महापुरुष श्रीकृष्ण को भी महाभारतकार ने आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। महाभारत में श्रीकृष्ण की भूमिका आत्मजागृत, धर्म संस्थापक महापुरुष की है। कुछ घटनाओं में उन्हें परमात्मा की अलौकिक शक्ति के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसा करके हमें अपने विस्मृत आत्मस्वरूप की स्मृति करवाई गई है। ग्रंथ के मूल आध्यात्मिक उद्देश्य के अनुरूप कृष्ण चरित्र के द्वारा व्यक्ति की आत्मा के शुद्ध किंतु सक्रिय स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। आत्मा-परमात्मा के निर्गुण तत्व की विवेचना भी अनेक ग्रंथों में मिलती है किंतु वह वर्णन सृष्टि निर्माण से पूर्व वाले परम तत्व का ही हो सकता है। यहाँ हमें जागृत हुए आत्म तत्व के सगुण सक्रिय स्वरूप का दर्शन करा कर 'सर्व भूत हिते रत:' वाले उनके जीवन और वचन का अनुसरण करने का संदेश दिया गया है।

महाभारतकार की श्रीकृष्ण के संबंध में जो अवधारणा है उसे भागवत ग्रंथ के संदर्भ से समझने में सहायता मिलती है। दोनों ग्रंथों के रचनाकार महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास है और दोनों ग्रंथ एक दूसरे के संपूरक है। भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण कथाओं का आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण चेतना मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त है। अनेक प्रकार की राक्षसी शक्तियों से संघर्ष के उपरांत हृदय समुद्र के अंदर परमात्मरुप श्रीकृष्ण का 'द्वारका' राज्य स्थापित होता है अर्थात एकात्म चेतना का द्वार खुलता है। तब वह परमसत्ता अंतर और बाह्य जगत के क्रियाकलापों को किस प्रकार प्रभावित करती है इसे महाभारत कथा में श्रीकृष्ण चरित्र के द्वारा चित्रित किया गया है। इसके आध्यात्मिक अर्थ को हृदयंगम करने हेतु प्रथम उन मुख्य-मुख्य

घटनाओं का संक्षिप्त सिंहावलोकन कर लेना उचित होगा जिसमें श्रीकृष्ण का हस्तक्षेप प्रमुखता से हुआ है।

मुख्य घटनाओं का वर्णन

श्रीकृष्ण द्वारका से पाँच बार आकर पांडवों से मिले हैं किंतु यहाँ हम इनमें से उन तीन घटनाओं की विवेचना करेंगे जिनमें श्रीकृष्ण की सहायता से ही दुष्ट कौरवों द्वारा हड़पी हुई सत्ता धर्मात्मा पांडव प्राप्त कर पाते हैं।

प्रथम हस्तक्षेप

महाभारत के रंगमंच पर श्रीकृष्ण सर्वप्रथम द्रौपदी के स्वयंवर के समय उपस्थित होते हैं। लक्ष्य भेद करने में दुर्योधन सहित अन्य सभी राजाओं के असफल होने किन्तु ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन के सफल होने पर जब क्रोधित राजाओं ने ध्रुपद पर आक्रमण किया तो भीम ने महाबली शल्य का और अर्जुन ने कर्ण का वीरता पूर्वक सामना करके उन्हें परास्त कर दिया। उस समय अन्य राजाओं को श्रीकृष्ण ने यह कह कर कि 'इन्होंने धर्म पूर्वक द्रौपदी को प्राप्त किया है' उन्हें युद्ध से हटा दिया। श्रीकृष्ण के पांडवों का सहायक बनने की गाथा यहीं से प्रारंभ होती है। वे पांडवों को उनके हाल पर नहीं छोड़ देते वरन उन्हें उनका स्वत्व दिलाने की मन में ठान लेते हैं। वे राजा द्रुपद के यहां रुक कर हस्तिनापुर से आगामी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करते हैं क्योंकि सब ओर यह ज्ञात हो गया था कि पांडव अग्निकांड के षड़यंत्र से जीवित बच गए हैं, तो हस्तिनापुर से या तो दुर्योधन खेमें के आक्रमण की आशंका थी अथवा धृतराष्ट्र द्वारा पांडवों पर स्नेह जताते हुए उन्हें हस्तिनापुर बुलाए जाने की संभावना थी, जिससे वह स्वयं पर लगे कलंक का परिमार्जन कर सके। इस दूसरी परिस्थिति में भी दुर्योधन गुट के किसी आगामी षड़यंत्र से पांडवों की सुरक्षा करना आवश्यक था। अनुमान अनुसार ही घटनाक्रम घटित होता है और अंततः पांडवों को लिवा लाने के लिए, धृतराष्ट्र विदुर को द्रुपद के यहाँ भेजते हैं। पांडवों के साथ श्रीकृष्ण भी हस्तिनापुर जाते हैं। वे वहां भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुर के माध्यम से धृतराष्ट्र के मन में यह बात अंकित करवा देते हैं कि दुर्योधन, शकुनि, कर्ण- इन तीनों की तिकड़ी के षडयंत्रो से राज्य की क्षीण होती प्रतिष्ठा और शक्ति को बचाने का एकमात्र उपाय यही होगा कि पांडवों को अलग प्रदेश का राज्य सौंप दिया जाए। जब धृतराष्ट्र उजाड़ खांडवप्रस्थ प्रदेश का राज्य पांडवों को देने का प्रस्ताव रखते है तो श्रीकृष्ण उस पर भी सहमति दे देते हैं। पांडवों के साथ वे खांडवप्रस्थ जाकर उस उजाड़ और पिछड़े प्रदेश को भी संपन्न बनाने में जुट जाते हैं। वे इंद्रप्रस्थ नाम के एक भव्य और

स्पृहणीय नगर का निर्माण करवा कर उसे राज्य की राजधानी बनवाते हैं। इस प्रकार वे पांडवों के उस राज्य को सब प्रकार से सुदृढ़ता प्रदान करके द्वारका लौट जाते हैं।

द्वितीय हस्तक्षेप

कुछ काल उपरांत पांडवों के उस छोटे से राज्य को एक धर्म-धुर साम्राज्य के रूप में स्थापित करवाने हेतु श्रीकृष्ण द्वारका से पुन: इंद्रप्रस्थ आते हैं। इस हेतु वे पांडवों से राजसूय यज्ञ करवाने की रूपरेखा बनाते हैं। इस कार्य में बाधक प्रमुख तीन दुष्ट शक्तियों को वे एक-एक करके ध्वस्त करने की योजना बनाते हैं। सर्वप्रथम वे खांडववन नामक घनघोर वन क्षेत्र को भयंकर हिंस्र दस्युवृत्ति वाले आतंकियों से मुक्त करवाने हेतु उस क्षेत्र को घेरकर जलाते हैं और अर्जुन के साथ वे दस्युओं से युद्ध कर उनके अड्डों को नष्ट कर देते हैं। इस विषय का आदिदैविक आध्यात्मिक रूपांतरण ग्रंथ में विस्तार से (आदि पर्व अध्याय 221 से 233 में) वर्णित है।

इसके पश्चात वे एक बहुत बड़ी सैन्य शक्ति से संपन्न मगध के दुष्ट सम्राट जरासंध को समाप्त करने की योजना बनाते हैं। क्रूर जरासंध ने अनेक छोटे राज्यों के राजाओं को कैद कर रखा था और उसकी योजना उनकी सामूहिक हत्या करके पूरे क्षेत्र में आतंक फैलाकर निरंकुश सम्राट बनने की थी। उसे युद्ध में जीतना तो संभव ही नहीं था। अतः श्रीकृष्ण भीम और अर्जुन के साथ ब्राह्मण वेशधर कर किसी प्रकार जरासंध के राजभवन में पहुँचकर उसे मल्लयुद्ध की चुनौती देतें है, जिसे जरासंध परिस्थिति वश स्वीकार कर लेता है। भीम द्वारा युद्ध में जरासंध मारा जाता है। बंदी राजाओं को मुक्त करके और जरासंध के पुत्र को राज गद्दी पर बैठाकर उन सबकी मित्रता प्राप्त कर ली जाती है और उन्हें इंद्रप्रस्थ राज्य का सहयोगी बना लिया जाता है। (सभा पर्व अध्याय 15 से 24: इस प्रसंग के आध्यात्मिक तत्व को इंगित करने के लिए बहुत से संकेत रखे गए हैं जिनकी विवेचना आगे की जावेगी)

मगध विजय के पश्चात भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव चारों भाई चारों दिशाओं में दिग्विजय यात्रा पर निकलते हैं और विजय प्राप्त करके लौटते हैं। तब यज्ञ के लिए सभी राजाओं को आमंत्रण पत्र भेजे जाते हैं।

उस समय एक और बड़ी भारी शक्ति चेदि नरेश शिशुपाल था। वह पांडवों का मौसेरा और श्रीकृष्ण का फुफेरा भाई था किन्तु अत्यंत अहंकारी था। उसे आदर पूर्वक आमंत्रित किया गया। यह समझ कर कि उसे मुख्य अतिथि का आदर दिया जाएगा, चेदि नरेश उस राज्योत्सव में उपस्थित होते हैं। किंतु जब भीष्म पितामह की

अनुशंसा पर सर्वश्रेष्ठ आदरणीय पुरुष का सम्मान श्रीकृष्ण को दिया जाता है तो चेदि नरेश अपना आपा खोकर भीष्म, पांडवों और श्रीकृष्ण पर अपशब्दों की बौछार शुरू कर देते हैं। श्रीकृष्ण को धोखेबाज बताते हुए वह उन्हें बलहीन, तुच्छ और कायर घोषित करता है। तब भीष्म पितामह शिशुपाल को श्रीकृष्ण से एकल युद्ध करने की चुनौती देते है। घमंडी शिशुपाल तुरंत तैयार हो जाता है और श्रीकृष्ण उसे मृत्यु की गोद में सुला देते है।(सभा पर्व- अध्याय 36 से 45: रहस्यात्मक संकेत - अध्याय 43)

तब यज्ञ संपन्न होता है और युधिष्ठिर को सम्राट के रूप में स्थापित करके श्रीकृष्ण द्वारका लौट जाते हैं।

अंतिम निर्णायक हस्तक्षेप

यद्यपि ब्राह्म बाधाओं का निराकरण हो चुका था किंतु दुर्योधन आदि का द्वेष तो पांडवों के इस उत्कर्ष से और भी प्रबल हो गया। वे अब प्रत्यक्ष आक्रमण करके तो इंद्रप्रस्थ साम्राज्य को हथिया नहीं सकते थे, अतः उन्होंने श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में युधिष्ठिर को जुए के चंगुल में फंसाया। पांडवों को 13 वर्ष के लिए इंद्रप्रस्थ का राज्य कौरवों को सौंपकर वनवास जाना पड़ा। श्रीकृष्ण को जब यह ज्ञात होता है तो वे पुनः आकर पांडवों से वन में मिलते हैं। वे उन्हें उस स्वआमंत्रित विपत्ति को धैर्य पूर्वक सहने किंतु साथ ही भविष्य की घटनाओं का अनुमान करते हुए, उस समय का भी सदुपयोग करने का परामर्श देते हैं। वे अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए उद्योग करने की सलाह देते हैं ताकि 13 वर्ष पश्चात यदि कौरव इंद्रप्रस्थ का राज्य ना लौटावें, जैसी कि पूरी संभावना थी, तो युद्ध के द्वारा राज्य पुनः प्राप्त किया जा सके। अवधि समाप्त होने पर कृष्ण द्वारका से पुनः लौट कर आते हैं, राज्य लौटाने से बहानेबाजी करने वाले कौरवों को समझाने के लिए वे स्वयं हस्तिनापुर जाते हैं किंतु दुर्योधन के किसी भी प्रकार ना मानने पर युद्ध की घोषणा करते हैं। पांडवों के न्यायपूर्ण पक्ष को विजय बनाने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। महाभारतकार के अनुसार युद्ध में वे प्रत्यक्ष तो अर्जुन के रथ का संचालन करने वाले सार्थी बनते हैं किंतु वास्तव में धर्मात्मा पांडवों को विजय, उनके नेतृत्व से ही प्राप्त होती है। कौरव पक्ष के सभी प्रमुख वीरों का हनन श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन से ही संभव हो पाता है। इस प्रकार, श्रीकृष्ण अंततः पांडवों को इंद्रप्रस्थ सहित हस्तिनापुर के संपूर्ण साम्राज्य पर प्रतिष्ठित करवाकर धर्मराज्य की स्थापना करवाते हैं।

नैतिक नियमों के हनन का प्रश्न

श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन को लेकर कभी-कभी यह आलोचना की जाती है कि उन्होंने युद्ध में कई अवसरों पर नैतिकता के विपरीत कदम उठाने का मार्गदर्शन दिया। किंतु यह आलोचना ग्रंथकार की इस मूल दृष्टि को विस्मृत कर देने के कारण उपजती है कि नैतिक नियम धर्म (अर्थात व्यक्ति और समाज के समग्र विकास के उपयुक्त सुव्यवस्था) की स्थापना के लिए होते हैं और यदि धर्म की रक्षा हेतु आवश्यक हो तो उन नैतिक नियमों का अतिक्रमण करके भी उन आतताईयों का हनन किया जाना उचित होगा, जिनमें धर्म और नैतिक नियमों के प्रति श्रद्धा है ही नहीं। महाभारतकार की यह दृष्टि सनातन धर्म के इस मूल सिद्धांत की ही व्युत्पत्ति है कि मनुष्य जीवन का मूल उद्देश्य व्यक्ति और समाज का समग्र विकास है। यदि परिस्थितिवश व्यक्ति विशेष के द्वारा नैतिक नियमों में बंधे रहने से अत्याचारियों को बल मिलता है तो उन परिस्थितियों में उन नियमों का उल्लंघन करना भी श्रेष्ठ कार्य होगा बशर्ते कि उस कार्य में व्यक्ति का निजी स्वार्थ ना हो। श्रीकृष्ण ने द्रोण , कर्ण आदि के वध के लिए पांडवों को नैतिक नियमों का उल्लंघन करने की सलाह तब दी थी जबकि इन लोगों सहित छः महारथियों ने मिलकर, सभी नैतिक नियमों की तिलांजलि देते हुए निःशस्त्र हो चुके अभिमन्यु का वध किया था।इस कार्य की तो धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु ने भी भर्त्सना करते हुए इसके दुष्परिणाम की भविष्यवाणी कर दी थीं। उसका तात्पर्य स्पष्ट था कि अब युद्ध में नैतिक नियमों की अवहेलना करने का क्रम प्रारंभ हो जाएगा।

इतिहास के आदर्श पुरुष, अध्यात्म के पुराण पुरुष

महाभारत में वर्णित श्री कृष्ण की गाथा स्पष्ट का इतिहास और पुराण (माइथोलॉजी) का मिश्रण है। ग्रंथ में हमें स्पष्ट देखने को मिलता है कि ऐतिहासिक वर्णन के बीच-बीच में अलग से पौराणिक संकेत वाले प्रकरण रखे गए और ग्रंथ में ही इस गाथा को इतिहास पुराण की गाथा कहा गया है। इतिहास की दृष्टि से देखें तो श्रीकृष्ण का चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उनका पूर्णतः निर्मल जीवन। उन्होंने ना तो अपने सुख के लिए, ना अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए कोई कार्य किया। धर्माचारी सदाचारी पुरुषों को राज्य सिंहासन पर आरूढ़ करवाकर चहुँ ओर धर्म राज्यों की स्थापना की। जहां तक हो सका दुष्टों का नाश भी उन्होंने बिना सैन्य युद्ध के द्वारा करने की सदा कोशिश की। कंस, जरासंध, शिशुपाल का बिना सैन्य युद्ध के हनन करना इसके उदाहरण है। महाभारत युद्ध ना हो इसके लिए भी उन्होंने पूरा प्रयास किया किंतु अनिवार्य हो जाने पर युद्ध की पीड़ा से डरकर उन्होंने धर्म स्थापना से मुंह नहीं मोड़ा।

वस्तुतः महाभारत कथा इतिहास से अधिक पौराणिक रूप में हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण है। वह हमारे जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को उद्घाटित करती है अथवा वैसा कर सकने के लिए हमारी सहायता करती है। अतः महाभारत में श्रीकृष्ण गाथा का आध्यात्मिक संकेतार्थ क्या है अब हम इस पर विचार करेंगे ।

गाथा का आध्यात्मिक अर्थ

जब हम गाथा के पौराणिक वर्णन वाले प्रकरणों पर विचार करते हुए आध्यात्मिक अर्थ का अन्वेषण करते हैं तो एक तथ्य हमें चौंका देता है। इन प्रकरणों में स्थान और व्यक्तियों के नाम भी आध्यात्मिक अर्थ के द्योतक हैं। निष्कर्ष क्या निकलता है कि ग्रंथ में ऐतिहासिक घटनाओं का आध्यात्मिक रूपांतरण, आध्यात्मिक अर्थ वाले नाम देकर किया गया है और इस ओर ध्यान आकर्षित करने हेतु ग्रंथकार ने अन्य संकेतों से युक्त पौराणिक वर्णन भी रख दिए हैं। इस तथ्य के उदाहरणों की विवेचना हम आगे करेंगे।

महाभारत की मुख्य कथा हस्तिनापुर पर दुर्योधन आदि के दुष्ट दल द्वारा पांडवों के विरुद्ध लगातार षड़यंत्र करके सत्ता हथिया लेने से प्रारंभ होती है और श्रीकृष्ण के हस्तक्षेप से वहां पांडवों की सत्ता स्थापित होने पर समाप्त होती है। वैदिक और पौराणिक साहित्य में हस्तिन अर्थात हाथी को बुद्धि का प्रतीक बनाया गया है (बुद्धि के देवता गणेश का मस्तक हाथी का है, ऋग्वेद के श्रीसूक्त में 'हस्तिनाद प्रबोधनीम' कहकर परमेश्वरीय शक्ति की वंदना की गई है), अतः स्पष्ट है कि इतिहास की गाथा में नगर का वास्तविक नाम कुछ भी रहा हो महाभारतकार ने उस गाथा का आध्यात्मिक रूपांतरण करते हुए उस नगर का नाम हस्तिनापुर कहकर बुद्धि के क्षेत्र को इंगित किया है। आरंभ में बहुधा दुष्वृत्तियाँ प्रबल रहती है और वे सद्वृत्तियोंको दबा देतीं है, उन्हें जीवन में क्रियाशील नहीं होने देती। किंतु कृष्ण रूप आत्मतत्व सद्वृत्तियोंको जिसप्रकार उन्हें क्रम से इंद्रियां, मन और बुद्धि के क्षेत्र स्थापित करवाता है, उसे ही कथा के रूप में वर्णित किया गया है।

खांडवप्रस्थ व्यक्ति के लिए उसकी इन्द्रियों का क्षेत्र है। खांडव का शाब्दिक अर्थ है खांड का स्वाद देने वाला, मीठा अर्थात सुखानुभूति। अतः खांडवप्रस्थ इंद्रिय सुख लालसा से संयुक्त मन है। अनेक तरह की कामनाएं और वासना ही भयंकर वन्य प्राणी हैं, जिनका आश्रय स्थल मन बन जाता है। विकास पथ पर आगे बढ़ने के इच्छुक व्यक्ति को वासनाओं से भरे हुए मन को उनसे मुक्त कराना आवश्यक होता है। पांडवों को खांडवप्रस्थ सौंपे जाने का यही संकेतार्थ है।

इंद्रप्रस्थ को राजधानी बनाने का अर्थ है मन में सर्वप्रथम शुभ संकल्पों का एक ऐसा केंद्र स्थापित करना जिनके अनुसार जीवन का शुभ संचालन हो। आध्यात्मिक ग्रंथों में व्यक्ति के संदर्भ में देवताओं से तात्पर्य इंद्रिया और उनके स्वामी इंद्र का अर्थ मन होता है। मन के भी अनेक रूपों में मुख्य तीन रूप है- प्रथम स्वार्थवृत्तियों से मुक्त सात्विक मन, द्वितीय ऐषणाओं (कामनाओं- पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा) से उक्त राजसिक मन, और तृतीय सुखभोग की लालसाओ से ग्रस्त तामसिक मन। पौराणिक गाथाओं में तदनुरूप इन्द्र के भिन्न रूपों का चित्रण देखने को मिलता है। पांडवों के लिए श्रीकृष्ण के सहयोग से बसाए गए इंद्रप्रस्थ को हम आध्यात्मिक अर्थ में शुभ संकल्पों (दैवी संपदा वाले गुणों) का केंद्र मान सकते हैं।

धर्म स्थापना की अगली कड़ी है धर्म सत्ता का क्षेत्रीय विस्तार। इस हेतु से श्रीकृष्ण राजसूय यज्ञ की योजना क्रियान्वित करवाने के लिए पुनः द्वारका से इंद्रप्रस्थ आते हैं। राजसूय यज्ञ के कर्मकांडीय स्वरूप का उद्देश्य देश को सत धर्म आधारित एक केंद्रीय व्यवस्था के अंतर्गत लाना था। व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक स्तर पर यह प्रतीक है व्यक्तित्व के संपूर्ण क्षेत्र पर सत्धर्म की सत्ता को स्थापित करने का। इस कार्य में उसके तीन स्तरों से संबंधित तीन प्रकार की बाधाओं के निराकरण की आवश्यकता को खांडववन दाह, जरासंध वध और शिशुपाल वध की गाथाओं द्वारा इंगित किया गया है।

अर्जुन श्रीकृष्ण की सहायता से खांडव वन का दहन करके उसमें छुपे हिंस्र प्राणियों पर विजय प्राप्त करते हैं। हम कह चुके है कि खांडवप्रस्थ प्रतीक है सुख भोग की लालसाओं से ग्रस्त मन का। ऐसे मन पर शासन स्थापित करने का अर्थ है संयम द्वारा नियंत्रण। किंतु इसका लाभ सीमित है। विषय छोड़ने के उपरांत भी रस अर्थात विषयों के प्रति जो राग रह जाता है उसकी समाप्ति नहीं होती। (गीता 2.59) ऐसे मन में छुपी हुई कामनाएं ही खांडव वन के हिंस्र प्राणी है और इन कामनाओं का आधार उनके प्रति राग का होना है। कृष्ण और अर्जुन द्वारा खांडव वन को जलाने का तात्पर्य मन को परम सत्ता से जोड़कर तप रुप किसी भी साधना द्वारा रागों से मुक्त करना है। अपनी योग्यता अनुसार साधना कोई भी हो सकती है, उधारणार्थ - जब, भजन, ध्यान अथवा प्राणियों की सेवा।इनमें मन को लगाने का सतत प्रयास करना तप है। किंतु इनमें बाधाएं उपस्थित होती ही है। कथा में इंद्र जो तक्षक नाग का मित्र है, बाधा डालता है। श्रीकृष्ण और अर्जुन देवताओं सहित इस इंद्रा को जब परास्त कर देते हैं तब अग्नि खांडव वन का दहन और अर्जुन हिंस्र प्राणियों का नाश करतें है। स्पष्ट ही यहां देवता प्रतीक हैं इंद्रियों में क्रियाशील चेतना के और इंद्र उनका पोषण

करने वाले मन का। उदगत चेतन रूप अग्नि के विकास कार्यों में जब यह तत्व बाधक बनते हैं तो इन बाधक शक्तियों को हटाने के लिए अर्जुन और श्रीकृष्ण (नर व नारायण) की आवश्यकता होती है। श्रीकृष्ण(नारायण) अर्थात आत्म शक्ति और अर्जुन(नर) अर्थात संकल्प शक्ति और पुरुषार्थ ।

इस प्रसंग में प्रथम दृष्टया एक विरोधाभास दिखाई देता है। अर्जुन इंद्रके पुत्र हैं, वनवास काल में वे दिव्यास्त्र प्राप्त करने इंद्र के पास ही गए थे, इंद्र ने ही पुत्र अर्जुन की रक्षा सुनिश्चित करने के लिए ब्राह्मण वेश धरकर कर्ण से कवच कुंडल दान में प्राप्त किए थे। किंतु यहां इंद्र तक्षक नाग की रक्षार्थ अर्जुन और श्रीकृष्ण से युद्ध करते हैं और पराजित होते हैं। वस्तुतः महाभारतकार ने इस आध्यात्मिक सत्य को बार-बार इंगित किया है कि व्यक्ति में उसके व्यक्तित्व के प्रत्येक स्तर पर देवासुर संग्राम चल रहा है। मन का एक सात्विक भाग वह इंद्र है जो अर्जुन रूप में श्रीकृष्ण का सखा है, तो दूसरा तामस अंश वो इंद्रा है जो नाग(अहंकार) का मित्र है। मनके इन दोनों भागों के बीच युद्ध होता रहता है, जिसमें आत्म तत्व रूप श्रीकृष्ण की सहायता से सत अंश विजय होता है।

एक और बात पर ध्यान देना उपयुक्त होगा कि इस प्रसंग में तथा जन्मेजय के नागयज्ञ वाले प्रसंग में भी तक्षक नाग के नष्ट होने से बचने का वर्णन है। यहां कहा गया है कि तक्षक उस समय खांडव वन में नहीं था, वह इंद्र के यहां गया हुआ था और यद्यपि इंद्र देवताओं सहित युद्ध करने यहाँ खांडवप्रस्थ आए किंतु तक्षक इंद्रलोक में ही छुपा रहा। जन्मेजय के नाग यज्ञ वाले प्रसंग में भी तक्षक को आस्तिक मुनि ने जलने से बचा लिया था। निश्चित ही इन वर्णनओं से एक महत्वपूर्ण संकेत दिया गया है। तक्षक नाग अहंकार का प्रतीक है। किंतु अहंकार के भी दो रूप है। व्यक्ति के स्तर पर सद्वृत्तियों को क्रियान्वित करने में भी अहंकार की भूमिका रहती है। अहंकार के विषैले डंक को ही तोड़ना आवश्यक है, समष्टि हित में उसका समूल नाश परमेश्वर को स्वीकार नहीं। वास्तव में अहंकार को नाश करने क सामर्थ्य व्यक्ति को परमेश्वर ने दिया ही नहीं है। जब वह सृष्टि की प्रगति में बाधक बनता है, परमेश्वर स्वयं उसे रास्ते से हटा देते हैं। हम आगे देखेंगे कि शिशुपाल वध के प्रसंग में तो उसे भगवान द्वारा अपने में लीन करने के रूप में वर्णित किया गया है।

जरासंध - राजसूय यज्ञ की सफलता में दूसरी बड़ी बाधा मगध सम्राट था। उसका तमस स्वभाव छोटे-छोटे राजा को कैद करके उनकी सामूहिक निर्दयी हत्या करने के क्रूर इरादे से प्रकट है। कथा में उसे दुष्प्रवृत्तियों के मूर्त रूप में इंगित किया गया

है। उसका नाम जरासंध संकेतात्मक, अर्थपूर्ण और उत्पत्ति की कहानी से जुड़ा हुआ है। उसका जन्म दो माताओं से- प्रत्येक से आधे-आधे शरीर का निर्माण होकर 'जरा' राक्षसी द्वारा जोड़ देने पर हुआ है। उसकी पत्नीयां दो है, पुत्रियां दो है, मंत्री दो हैं और रथ भी दो योद्धाओं की सवारी वाला है।एक स्पष्ट संकेत यह कहकर दिया गया है कि जरासंध प्राणियों के भीतर स्थित होकर अकेला ही सब सुखों (श्रीओं) का उपयोग करता है। सब संकेतों पर विचार करें तो यह व्यक्ति की प्राणिक चेतना को इंगित करता है, जिसकी दो संभावित दिशाएं है- 1.)ज्ञान/अध्यात्म का उर्ध्व पथ और 2.) अज्ञान/अहंकार का अधोगामी पथ। व्यक्ति के यद्यपि यह दोनों आयाम उपलब्ध हुए हैं किंतु बहुधा उसका अज्ञान और अहंकार उसे जरासंध बना देता है। 'जरासंध' बना हुआ तो दो प्रकृतियों के मेल (संधि) से है किंतु वह जी रहा है केवल दुर्बलता (जरा) रूप निम्न प्रकृति के क्षेत्र में। यह दो प्रकृतियाँ गीता के अनुसार परा और अपरा प्रकृतियाँ हैं, उसकी दो माताएं हैं। अपरा प्रकृति माया है जो उसे संसार का विस्तार करने के लिए प्रेरित करती है और परा प्रकृति भक्ति है, जो उसे परमात्मा की ओर प्रेरित करती है। (इसकी विस्तृत चर्चा हम आगे द्रौपदी और सुभद्रा के विवेचन में करेंगे।) श्री अरविंद ने इन्हें क्षैतिज(horizontal) और ऊर्ध्व(vartical) विकास की प्रेरणाऐ कहा है। तुलसी ने भी समष्टि चेतना की इन द्वि आयामी गतियों को 'दुई माथ' शब्द से इंगित किया है।(मानस 1.83.12 छंद) दो पत्नियां हैं- देवी और आसुरी संपदा (गीता- अध्याय 16, दो पुत्रियों के नाम है अस्ति होने का भाव, शुद्ध अहं भाव) और प्राप्ति (संसार का स्वामी बनने का भाव), दो मंत्री हैं- हंस और डिम्भक जिन्हें क्रमशः कौशिक और चित्रसेन नाम से भी संबोधित किया गया है। हंस/ कौशिक नाम विवेक बुद्धि को इंगित करता हैं और डिम्भक/ चित्रसेन मन को। रथ शरीर है जिस पर यह दोनों चेतनाऐ आरूढ़ है।

सारांश यह है कि जरासंध व्यक्ति की प्राणिक चेतना है और मंत्री हैं व्यक्ति के मानव और बुद्धि। जब तक यह मंत्री जीवित रहें उन्होंने, जरासंध को नीतिगत मार्ग से डिगने नहीं दिया और वह सुरक्षित रहा। इन मंत्रियों के मरने के बाद, जरासंध भटक गया। वह अन्यायी और क्रूर हो गया। वह धर्म को भी कलुषित करने लगा। उसने संकल्प किया कि एक सौ राजाओं को जीतकर, वह उनकी बली भगवान रूद्र को चढ़ाकर साम्राज्याधिपति बनेगा, इस उद्देश्य से छियासी राजाओं को वह बंदी बना चुका था। ऐसी दुष्टा स्तर पर उतर चुके जरासंध को श्रीकृष्ण ने भीम से मल्ल युद्ध में मरवाया।

महाभारतकार ने इस प्रकरण में कुछ और आध्यात्मिक संकेत प्रस्तुत किए हैं। कंस जरासंध का दामाद था। अतः श्रीकृष्ण से कंस वध का प्रतिशोध लेने हेतु जरासंध ने मथुरा पर बहुत बड़ी सेना लेकर आक्रमण किया। श्रीकृष्ण ने इसे जरासंध का अपने प्रति द्वेष मानकर, सैन्य युद्ध का शंखनाद नहीं किया। वे यादवों सहित मथुरा छोड़कर, पश्चिम दिशा में दूरस्थ प्रदेश द्वारका चले गए। इस ऐतिहासिक घटना में श्रीकृष्ण का लोकहित के प्रति समर्पण और उनकी अहंकार शून्यता स्पष्ट प्रकट होती है। महाभारतकार ने इस घटनाक्रम का आध्यात्मिक रूपांतरण यह कह कर किया है कि जरासंध ने कृष्ण पर 18 बार आक्रमण किए। यह 18 की संख्या सांख्य दर्शन से संबंधित है, जो प्रकृति के सुक्ष्म 18 तत्वों को दर्शाती है। इस वर्णन का अभिप्राय जरासंध को प्रकृति से उत्पन्न हुई चेतना की प्रथम स्थिति - प्राणिक स्थिति को इंगित करना है।

जरासंध कृष्ण पर बार-बार आक्रमण करता है किंतु श्रीकृष्ण उसे केवल पराजित करते है, मार नहीं डालते। संकेत यह दिया गया है कि श्रीकृष्ण आत्म तत्व है और प्रकृति उनकी ही निर्मिती है। उनका प्रकृति से शत्रुता का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रकृति में स्थित जरासंध आदि जीवधारी अपने अज्ञान के कारण श्रीकृष्ण को ना पहचानते हुए उन्हें भले ही अपना शत्रु मान बैठे, वे राग-द्वेष से मुक्त केवल सत्कार्य करने वालों के लिए अनुमन्ता तथा सहायक होकर धर्म स्थापना करवाते हैं। इस बात को महाभारत कथा में बार-बार स्थापित किया गया है कि व्यक्ति अथवा समष्टि के प्रत्येक स्तर - शरीर, मन, प्राण अथवा अहंकार स्तर पर - सात्विक और तामसिक शक्तियों के बीच जो सतत देवासुर संग्राम चलता रहता है उसमें श्रीकृष्ण रूप आत्म-तत्व प्रत्यक्ष भाग न लेते हुए, सात्विक शक्तियों को केवल मार्गदर्शन देकर उनकी विजय का पथ प्रशस्त करते हैं। खांडव वन दाह प्रकरण में वे तामसिक मन रूप इंद्र को सात्विक मन रूप अर्जुन से परास्त कराते हैं, फिर तामसिक प्राण शक्ति रूप जरासंध का वध सात्विक प्राण शक्ति रूप भीम से करवाते है तथा अंत में तामसिक वृत्तियों के मूर्तरूप धृतराष्ट्र पुत्रों के विरुद्ध सात्विक वृत्तियों के मूर्तरूप पांडवों को स्वयं युद्ध न करते हुए उन्हें नेतृत्व प्रदान करके विजय बनाते हैं। महाभारत कथा में श्रीकृष्ण ने स्वयं केवल कंस और शिशुपाल का वध किया है। कंस देहासक्ति का और शिशुपाल, जैसा कि हम आगे देखेंगे अहंकार का मूर्तरूप है। इन विकारों का नाश करना व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर है। यह कार्य परमेश्वर स्वयं ही व्यक्ति को योग्यता प्राप्त हो जाने पर उसके लिए संपन्न करते हैं।

श्रीकृष्ण ने भीम को जरासंध का वध करने की विधि संकेत से समझाई थी, वह भी आध्यात्मिक अर्थ से युक्त है। भीम और जरासंध का मल्ल युद्ध बहुत देर तक चलता रहा किंतु दोनों में से कोई भी परास्त नहीं हो रहा था। श्रीकृष्ण ने तब भीम को एक संकेत किया। उन्होंने घास का एक तृण चीरकर दो फाड़ कर दी। भीम इशारा समझ गया, उसे जरासंध के जन्म की दो फांको से जुड़े होने की कहानी याद आ गई। उसने जरासंध को पटक कर उसके शरीर को लंबवत पैरों से चीरते हुए दो फाड़ करडाली किंतु महान आश्चर्य कि मृत जरासंध की वे दोनों फाड़े पुनः जुड़ गई और वह जी उठा। युद्ध पुनः चालू हो गया। तब श्रीकृष्ण ने पुनः इशारा किया। उन्होंने तिनका चीरकर दोनों हाथों से फाड़ो को विपरीत दिशा में फेंका। इस बार भीम ने भी जरासंध के शरीर की दोनों फाड़ो को विपरीत दिशाओं में फेंक दिया। तब जरासंध मारा गया। इस वर्णन का आध्यात्मिक अर्थ यह है कि अपनी तामसिक वृत्तियों को समाप्त करने के लिए हम अपने हृदय में झांककर अपनी प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें। हमें परा और अपरा प्रकृति की सात्विक और तामसिक प्रेरणाऐ स्पष्टतः भिन्न दिखेगी। वस्तुतः चेतना की गति विकासोन्मुखी है। अतः अधोगति की ओर ले जाने वाली प्रवृत्तियों की पहचान होते ही व्यक्ति में उन्हें त्याग देने की इच्छा और पश्चात संकल्प जागेगा, अर्थात जरासंध की मृत्यु हो जाएगी।

शिशुपाल - अब शिशुपाल के आध्यात्मिक अर्थ पर विचार करें। शिशुपाल व्यक्ति के विकृत अहं अर्थात अहंकार का प्रतीक है। जैसे जरासंध के रूप में हमारे समक्ष प्राण शक्ति का तामसिक प्रादर्श प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार शिशुपाल तामसिक अहंकार का प्रादर्श है। इसी तथ्य को प्रकाशित करने के लिए उसके भी जन्म के संबंध में संकेतों से युक्त एक कहानी कही गई है। (महाभारत 2.43)
जन्म के समय इस बालक के तनपर तीन आंखें व् चार भुजाएं थी और वह गधे के रेंकने की आवाज में भयंकर घोष कर रहा था। माता श्रुत श्रवा (श्रुत श्रवा शुद्ध शब्द शब्द का अर्थ है- अंतः श्रुत, अंदर की आवाज), पिता चेदिराज दमघोष (दम घोष- जिसने उस आवाज को दबा दिया हो) ने अन्य भाई बंधुओं सहित भयविह्वल हो उसे त्याग देने का निश्चय किया। उस समय आकाशवाणी हुई, 'शिशु का पालन करो, यह श्री संपन्न और महाबली होगा।' आकाशवाणी ने पुनः कहा 'इसकी मृत्यु का निम्मित वह बनेगा जिसकी गोद में इसके अतिरिक्त दोनों हाथ व तीसरा नेत्र विलीन हो जाएंगे।' कुछ काल उपरांत जब श्रीकृष्ण ने इस बालक को गोद में लिया तो अतिरिक्त हाथ और तीसरा नेत्र विलीन हो गये। कहानी का संकेत यह है कि मनुष्य में जीवआत्मा यद्यपि परमात्मा का अंश है, किंतु परमात्मा ने उसे अपनी सारी

शक्तियां प्रदान नहीं की हैं। भगवान विष्णु के चार हाथों में जो शंख, चक्र , गदा, पद्म है वह उनकी चार क्रियात्मक शक्तियां हैं। वेद और पुराणों में दिशाओं को देवी-देवताओं की भुजाओं से और उनकी चेतन शक्तियों को उनके हाथों में ग्रहण किए गए चिन्हो/आयुधों से निरूपित किया गया है। ऋग्वेद, विष्णु पुराण, ललिता-सहस्रनाम इत्यादि ग्रंथों के तत्सम्बन्धी मंत्रों को 'भारतीय प्रतीक विद्या'- डॉ जनार्दन मिश्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पृष्ठ 57, 2.16, 224) में उद्धृत किया गया है। इनके द्वारा वे इस जगत का संचालन कर रहे हैं। इन प्रतीकों की सरल व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं- शंख प्रतीक है उनकी ज्ञान-शक्ति/सर्वज्ञता का, चक्र प्रतीक है सतत परिवर्तन/मृत्यु रूप उनकी प्रकृति शक्ति का, गदा और पद्म प्रतीक है उनकी नियामक का शक्ति रूप दुख-कष्ट तथा सुख-शांति का। तीन नेत्र प्रतीक है काल के तीन आयाम- भूत, भविष्य और वर्तमान के। श्रीकृष्ण की गोद में शिशुपाल के दो अतिरिक्त हाथ और नेत्र के विलोपित हो जाने के वर्णन से यहां परमात्मा और जीवात्मा की तुलना प्रस्तुत की गई है। जीवात्मा परमात्मा का अंश अवश्य है किंतु एक अल्पांश इकाई में समग्र के सभी गुण नहीं होते, इसे भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक दर्शन दोनों स्वीकार करते हैं। जल के द्रवीय, पिण्डीय अथवा वायव्य(गैसीय) गुण, जल के अणु को प्राप्त नहीं है। गीता में भगवान ने कहा है। (9.4 वन 9.5) कि सब भूत यद्यपि मेरे अंश है, लेकिन मैं सारे गुणों के साथ भूतों में स्थित नहीं हूँ, भूतों में स्थित मेरी आत्मा भूतों का धारण पोषण और भूतों को उत्पन्न करने वाला नहीं है।विशिष्टाद्वैत सिद्धांत भी जीवात्मा और परमात्मा के एकत्व और भिन्नता का ऐसा ही प्रतिपादन करता है। शिशुपाल के जो दो हाथ और एक नेत्र लुप्त हुए वे किन शक्तियों को और शेर दो हाथ, दो नेत्र किन शक्तियों को निरूपित करते हैं, इसे समझने का अब हम प्रयास करें। मनुष्य को ज्ञान अर्जन करने की और कर्म करने की जो क्षमताये प्राप्त हुई है, उन दोनों का समन्वित सदुपयोग करने की बात गीता, भागवत, योग-वाशिष्ठ, ईशोपनिषद जैसे सभी प्रमुख ग्रंथों में स्थापित की गई है।वस्तुतः मनुष्य को इन शक्तियों के अर्जन और उपयोग करने की जो स्वतंत्रता या आयाम दिए गए हैं उनके प्रतीक है शिशुपाल के दो शेष हाथ। परमात्मा की शंख रूप सर्व और अखंड ज्ञान का एक अल्पांश बुद्धि-विवेक की और उनकी चक्र रुप प्रकृति शक्ति का क्षुद्रांश हमें कृति/ कर्म शक्ति कि क्षमताओं के रूप में प्राप्त हुआ है जिनका सदुपयोग करके हम इन्हें उनसे और अधिक मात्रा में भी प्राप्त कर सकते हैं। गदा और पद्म के रूप में दंड और पुरस्कार के विधान का संचालन उन्होंने अपने पास रखा है। इसी प्रकार काल के तीन आयामों में से भविष्य का ज्ञान उन्होंने मनुष्य को प्रदान नहीं किया।

परमात्मा के क्षुद्र अंश के रूप में जीवात्मा का एक गुण परमात्मा के तदनुपरूप गुण से कुछ भिन्न भी हो जाता है। जैसे अत्यंत लघु (नैनो मीट्रिक) कणों के रूप में पदार्थ के कुछ गुण मूल पदार्थ से भिन्न हो जाते हैं, वैसी ही स्थिति 'अहं भाव' गुण के संबंध में बन जाती है।परमात्मा सार्वलौकिक अहं है तो जीव आत्मा उसका क्षुद्र अंश 'मै हूँ' रूप में अहं भाव है। यह जब शरीर में केंद्रित हो जाता है तो तमस रूप घोर स्वार्थ में बदल जाता है, जब मन में क्रियाशील होता है तो राजसिक हो जाता है और बुद्धि (ज्ञान) के साथ क्रियाशील हो कर जाति प्रेम, देश प्रेम अथवा मानव प्रेम के रूप में प्रकट होता है। नवजात बालक शिशुपाल वस्तुतः 'अहं' का ही रूप था और आकाशवाणी के निर्देश- 'शिशु का पालन करो' - का तात्पर्य है कि अहं अपने आप में हेय नहीं है। इस शुद्ध अहं का परमात्मा विनाश नहीं, प्रेम रूप में उसका विस्तार चाहता है। उससे वह जगत में श्रेष्ठ क्रियाएं संपन्न कराकर विकास के धर्म चक्र को गति दिलाना चाहता है। किंतु यदि कोई जीव आत्मा इस से भटक जाता है और अहंकार रूप गहरे अज्ञानकूप में गिर जाता है तो परमेश्वर उस अहंकार का नाश करते हैं।

चेदि नरेश शिशुपाल का जीवन इस दूसरे पक्ष का ही उदाहरण प्रस्तुत करता है। इंद्रप्रस्थ यज्ञ की अतिथि सभा में मुख्य अतिथि का सम्मान ना मिलने पर वह जिस प्रकार महान योद्धा भीष्म, अर्जुन, श्रीकृष्ण और यजमान युधिष्ठिर पर बरसे और अपशब्द कहे, वह उसके अहंकार का अंधापन था। अहंकार में डूबा उसका जीवन कितना स्वेच्छाचारी और कदाचारी हो गया था उसका कच्चा-चिट्ठा श्रीकृष्ण ने उस सभा में सुनाया है जब उसने श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा- 'जनार्दन! मैं तुम्हें बुला रहा हूं, आओ मेरे साथ युद्ध करो' (महाभारत 2.45.2)। कथा में सौ अपराध क्षमा करने के बाद, सुदर्शन चक्र द्वारा शिशुपाल का मस्तक छेदन करने का अर्थ है कि जीवन में अनुभवों से परिवर्तन हो सकने की संभावना के परिपेक्ष मैं परमेश्वर हमारे अहंकार जनित अपराधों का तुरत-फुरत दंड नहीं दे देते। वह तभी हस्तक्षेप करते हैं जब अहंकार धर्म पथ के मार्ग में चट्टानी बाधा बन जाए, अन्यथा अहंकार का क्षमन परिस्थितियों वश भी होता है, यह हम अपने अनुभव से भी जानते है। यहाँ सुदर्शन चक्र प्रतीक है, निरंतर चल रहे संसार चक्र का। यदि हमारे अहंकार का क्षमन हम स्वयं नहीं कर पाते है तो परम-शक्ति उस चक्र का सञ्चालन अपने हाथ में लेकर ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करती है जिनसे समष्टि विकास की बाधा और व्यक्ति के अहंकार का क्षमन, दोनों कार्य संपन्न हो जाते है।

इस प्रकार मन, प्राण और अहंकार की तमस शक्तियों का, इन्हीं क्षत्रों की सद्शक्तियों के द्वारा क्षमन करवाकर, श्रीकृष्ण इंद्रप्रस्थ का राजसूय यज्ञ संपन्न करवाते हैं जिससे सद्शक्तियों की सत्ता इन क्षेत्रों पर स्थापित हो जाती है।

किंतु धर्म स्थापना का कार्य भी पूरा नहीं होता, एक बड़ी समस्या बुद्धि पर तमसवृत्तियों का अधिपत्य होना है। यह तमसवृत्तियाँ अपने पक्ष के समर्थन में तर्क गढ़कर सद्वृत्तियों को कार्य नहीं करने देती। श्रीकृष्ण के द्वारका लौट जाने पर कौरवों द्वारा जुए का छल रचकर, पांडवों को इंद्रप्रस्थ की सत्ता से भी निष्कासित कर देने एवं पांडवों द्वारा 13 वर्ष के वनवास के शर्त पूरी कर देने पर भी कौरवों द्वारा अपने कुतर्क गढ़कर राज लौटाने से साफ इनकार करने की जो घटनाएं वर्णित है, वह कुत्सित बुद्धि के कार्य करने की इसी शैली को दर्शाती है। श्रीकृष्ण युद्ध में पांडवों को पग-पग पर मार्गदर्शन देकर उन्हें हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ के संपूर्ण राज्य पर प्रतिष्ठित करा देते हैं, यह कार्य उनके धर्म संस्थापना व्रत को प्रकाशित करता है। यहां भी श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध नहीं करते, केवल मार्गदर्शन देते हैं। श्रीकृष्ण को स्पष्टतः आत्म-तत्व की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है कि आत्म तत्व सक्रिय रहकर केवल अपनी उपस्थिति से व्यक्ति के पुरुषों को सक्रिय करता है

◆ ◆ ◆

इतिहास के श्रीकृष्ण को पुराण पुरुष बनाए जाने का आध्यात्मिक अर्थ

श्रीकृष्ण इतिहास के महापुरुष भी हैं और हैं पुराण-पुरुष भी। छांदोग्य उपनिषद (3.17.6) में कहा गया है कि जीवन को यज्ञ (नि:स्वार्थ कर्म के) रूप में जीने की शिक्षा घोर नामक महर्षि आंगिरस ने देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को दी थी जिसे जीवन में उतारकर वे पूर्ण पुरुष बने। परवर्ती काल में इन्हीं श्रीकृष्ण को महाभारत और भागवत पुराण में पुराण-पुरुष (मिथक) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह रूपांतरण हमें आध्यात्मिक दिशा-बोध देने हेतु किया गया है। उक्त अध्यात्मिक संदेश क्या है, इस हेतु से हम इन ग्रंथों पर पहले एक विहंगम दृष्टि डालेंगे और पश्चात कुछ मुख्य घटनाओं का अध्ययन करेंगे।

महाभारत और भागवत पर एक सरसरी दृष्टि

यद्यपि दोनों ग्रंथों में श्री कृष्ण को परमेश्वर के अवतार के रूप में प्रस्तुत किया गया है और इनके चरित्र वर्णन में दोनों ग्रंथों में परस्पर क्रम परिलक्षित होता है, फिर भी दोनों की दृष्टि में काफी भिन्नता है। भागवत में श्रीकृष्ण के जन्म, शिशु, बाल और कुमार वय की अलौकिक लीलाओं का वर्णन है, तो महाभारत में उनके प्रौढ़ जीवन के राजनीतिक, सामाजिक नेतृत्व की, और गीता में उनके जीवन दर्शन की झांकी है।

महाभारत की कथा में भी मुख्य चरित्रों को स्पष्ट ही प्रतीक रूप से प्रस्तुत किया गया है - भीष्म, कर्ण, पांचों पाण्डव, द्रौपदी, धृष्टद्युम्न आदि की उत्पत्ति ही मानवीय न होकर दैविक है। ग्रंथ में कुछ अलौकिक घटनाओं का भी समावेश किया गया है, फिर भी उसके वर्णन को ऐतिहासिक बनाने के साथ ही भौगोलिक और ग्रह-नक्षत्रीय वर्णनों से युक्त करके उसे सहजता प्रदान की गई है। इसलिए इसे यथावत ग्रहण करने में और उससे धर्म अर्थात अध्यात्म आधारित व्यवहार का संदेश ग्रहण करने

में हमें कठिनाई नहीं होती, किंतु इसमें भी भौतिक वर्णनों के पीछे छिपे गहन आध्यात्मिक संदेश हैं जिन्हें गीता में शाब्दिक अभिव्यक्ति दी गई है।

दूसरी ओर, यद्यपि भागवत का व्यावहारिक संदेश इतना स्पष्ट नहीं दिखता, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि अध्यात्म आधारित व्यवहार के लिए आवश्यक, व्यक्ति की आंतरिक शुद्धि का प्रतीकात्मक वर्णन ही भागवत में हुआ है। इस हेतु से उसमें सृष्टि की संपूर्ण विकास प्रक्रिया का और उस प्रक्रिया को सम्पन्न करने वाली परमात्म शक्ति का दिग्दर्शन ग्रंथ के पूर्वार्ध (स्कन्ध 1 से 9) में करा कर उत्तरार्ध (स्कन्ध 10 से 12) में श्रीकृष्ण लीलाओं के द्वारा व्यक्ति के आतंरिक शुद्धिकरण और आध्यात्म जागृति का प्रतीकात्मक वर्णन किया गया है।

हम यहां दोनों ग्रंथों में से श्रीकृष्ण जीवन के कुछ प्रमुख प्रसंगों का अध्ययन आध्यात्मिक अर्थ की दृष्टि से करेंगे।

श्रीकृष्ण जन्म प्रसंग : 3 माताओं का रूपक

अध्यात्म की दृष्टि से श्रीकृष्ण आत्म-तत्व के मूर्तिमान (Personified) रूप हैं। जीवन का सुक्ष्म रूप चेतना है और उसके विकास का पूर्ण रूप आत्म-तत्त्व की जागृति है। क्योंकि जीवन प्रकृति से ही उद्भूत और विकसित होता है अतः त्रिगुणात्मक प्रकृति के रूप में श्रीकृष्ण की भी तीन मातायें हैं - संसार-माया में कैद रजोगुणी प्रकृति माता देवकी जिनकी कोख से श्रीकृष्ण जन्म लेते हैं, सतोगुणी प्रकृति रूपा माँ यशोदा जिनके वात्सल्य प्रेम रस को पी कर वे बड़े होते हैं, और छद्म माँ बनी घोरतम रूपा पूतना जो इस आत्म-तत्व के प्रस्फुटित अंकुरण को नष्ट करने का प्रयास करती है, किंतु जो स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। मानवीय देवकी तामसिक अहंकार रूप कंस की बहन है और राक्षसी पूतना उसकी दासी।

श्रीकृष्ण जन्म की यह कथा प्रकृति में क्रियाशील, विकास के सार्वभौमिक नियम को प्रकट करती है। प्रकृति में भौतिक विकास के साथ चेतना विकास की अंतर्धारा भी प्रवाहित है। मनुष्य के व्यक्तित्व के आंतरिक धरातल पर, साइकिक स्तर पर, नैसर्गिक दिव्य प्रेम का बीज सुषुप्त (अविकसित), विकासशील अथवा विकसित, किसी न किसी अवस्था में विद्यमान है। कथा में देवताओं की प्रार्थना से श्रीकृष्ण अवतार ग्रहण करते हैं। व्यक्ति स्तर पर हमारी राजसिक वृत्तियाँ अर्थात दूसरों का अहित किये बिना अपने लिए सुख चाहने की वृत्तियाँ ही देवता हैं और बुद्धि ब्रह्मा है। ये जब आंतरिक और बाह्य आसुरी वृत्तियों/शक्तियों से परास्त होकर परमेश्वर की

शरण जाते हैं तो ह्रदय में आध्यात्मिक शक्ति का जागरण होता है। व्यष्टि स्तर पर यही श्रीकृष्ण जन्म है। समष्टि स्तर पर महापुरुषों/अवतारों का आना भी इसी प्रकार होता है यह स्वयं श्रीकृष्ण ने ही 'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति' की घोषणा में कहा है।

गोकुल वृंदावन की लीलायें और क्रीड़ायें

शिशु और बाल वय में ही श्रीकृष्ण द्वारा अनेक राक्षसों के वध की लीलाओं, तथा सहज सरल ह्रदय मित्रों और ग्राम वासियों में आनंद और प्रेम बांटने वाली क्रीड़ाओं का विशद वर्णन भागवत में हुआ है। शिशु चरित्र गोकुल में और बाल-चरित्र वृंदावन में संपन्न होने का जो उल्लेख है वह आध्यात्मिक अर्थ की ओर संकेत करता है। 'गो' शब्द का अर्थ इंद्रियां भी है अतः गोकुल से आशय है हमारी पंचेन्द्रियों का संसार और वृन्दावन का अर्थ है तुलसीवन अर्थात मन का क्षेत्र। गोकुल में पूतना , शकटासुर और तणावर्त आदि और वृन्दावन में बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर आदि अनेक राक्षसों के हनन का वर्णन है। व्यक्ति और समाज को इनकी पहचान अपने अंदर व्याप्त आसुरी वृत्तियों के रूप में करनी होगी तभी आध्यात्मिक नैतिक शक्ति से इनका हनन संभव होगा।

संभवतः पूतना प्रतीक है व्यक्ति के घोर स्वार्थ वाली निकृष्टतम तामसिक वृत्ति की और शकट नाम है छकड़ा या भार ढोने की गाड़ी का जिसे अज्ञान के कारण जीवन को भार रूप में ढोने वाले मानस का प्रतीक माना जा सकता है। इसी प्रकार तृणावर्त उस जीवन का प्रतीक है जो तृण अर्थात् तुच्छ इच्छाओं या विषयों के चारों ओर चक्कर खाता रहता है। कृष्ण-भाव के उदित होते ही इनका नाश होना सुनिश्चित है।

वृंदावन की कथाओं में कालिय नाग, गोवर्धन, रासलीला और महारास वाली कथाओं को अधिक महत्व प्राप्त है। श्रीकृष्ण ने यमुना को कालिय नाग से मुक्त शुद्ध किया था। यमुना, गंगा, सरस्वती नदियों को क्रमशः कर्म, भक्ति और ज्ञान की प्रतीक माना गया है। ज्ञान अथवा भक्ति के अभाव में कर्म का परिणाम होता है कर्ता में कर्तापन के अहंकार विष का संचय। यह अहंकार ही कर्म-नद यमुना का कालिय नाग है। सर्वात्म रूप कृष्ण भाव का प्रादुर्भाव इस अहंकार-विष से कर्म और कर्ता की रक्षा करता है।

गोवर्धन धारण कथा की आर्थिक नीति परक और राजनीतिक व्याख्याएँ की गई है। इस कथा का आध्यात्मिक संकेत यह दिखता है कि गो अर्थात इंद्रियों का वर्धन

(पालन-पोषण) कर्ता परमेश्वर पर हमारी दृष्टि होनी चाहिए। इसी प्रकार गोपियों के साथ रासलीला के चित्रण में मन की वृत्तियाँ ही गोपिकाओं के रूप में मूर्तिमान हुई है और प्रत्येक वृत्ति के आत्म-रस से सराबोर होने को ही रासलीला या रासनृत्य के रूप में चित्रित किया गया दिखता है। इससे भी उच्च अवस्था का प्रेम और विरह के बाह्य द्वैत का एक आंतरिक आनंद में समाहित होने की दशा का वर्णन महारास में हुआ है, ऐसा ही अनुमान बनता है।

मथुरा आगमन और कंस वध

श्रीकृष्ण के किशोर वय होते ना होते कंस उन्हें मरवा डालने का एक बार फिर षड़यंत्र रचकर मथुरा बुलवाता है, किंतु श्रीकृष्ण उसको उसके महाबली साथियों सहित मार डालते है। कंस शब्द का अर्थ और उसकी कथा भी संकेत करती है कि कंस देहासक्ति का मूर्तिमान रूप है जो भविष्य में कभी होने वाली मृत्यु से बचने के लिए कितने भी कुत्सित कर्म करता है। मथुरा का शब्दार्थ - 'विक्षुब्ध किया हुआ।' अतः मथुरा है देहासक्ति से विक्षुब्ध मन। श्री कृष्ण द्वारा कंस वध का अर्थ है आत्म-भाव में प्रवेश की पूर्व शर्त है देहासक्ति की समाप्ति।

समुद्र में द्वारिका निर्माण और राज्य स्थापना

द्वारिका शब्द में द्वार का साधारण अर्थ है साधन, उपाय या प्रवेश मार्ग।आत्म-क्षेत्र का प्रवेश द्वार है द्वारिका। कंस नाश के बाद श्रीकृष्ण समुद्र के भीतर (अंत समुद्रे भा. 10/50/50) द्वारिका का निर्माण करवाते हैं और वहाँ राज्य स्थापित करते है। प्रतीत होता है कि समुद्र व्यक्तित्व के गहरे तल आत्मक्षेत्र को इंगित करता है। इस क्षेत्र में चेतना का प्रवेश होने पर जीवन का जैसा स्वरूप होगा उसका निरूपण द्वारिका पर श्री कृष्ण राज्य के रूप में किया गया दिखता है। इस क्षेत्र का परिचय हमें महाभारत में श्रीकृष्ण के कार्य और गीता के अंतर्गत उनकी वाणी द्वारा कराया गया है।

महाभारत में श्रीकृष्ण हैं आत्मस्थ महापुरुष और हैं परमेश्वर के प्रतीक भी

महाभारत में वर्णित घटनाओं में जहां-जहां श्रीकृष्ण का संबंध है वहाँ वे या तो एक आत्मस्थ सह धर्मस्थापक महापुरुष अथवा सर्वात्म रूप परमात्मा की भूमिका में हैं। कुछ उदाहरण देखें -

धृतराष्ट्र की राज्यसभा में द्रौपदी के वस्त्र हरण के प्रयास का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है उसमें श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति के द्वारा यह स्पष्ट संदेश प्रेषित किया गया है

कि व्यक्ति अन्याय गुणों में कितना भी महान क्यों न हो, यदि उसमें आत्म-तत्व की जागृति नहीं है तो धर्म-अधर्म और कर्म-अकर्म के संबंध में वह कैसा मूढ़ होता है। भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कर्ण आदि सभी दिग्गज पुरुष जो वीरता , ज्ञान, सत्य, बल, अनुशासन, अथवा दान आदि महान गुणों के मूर्तरूप है अपना सिर नीचे किए बैठे हैं और धर्म की दुहाई दे रहे उन्हीं की कुलवधू अबला नारी के प्रति होने जा रहे घोर अन्याय और अपमान के विरुद्ध उनमें से किसी को भी अपना कर्तव्य-बोध नहीं जागता क्योंकि यह सभी अपने-अपने गुणों के अहंकार में बद्ध हैं। श्रीकृष्ण जब अदृश्य रूप में अलौकिक ढंग से द्रौपदी की रक्षा करते हैं तो यहाँ स्पष्ट ही श्रीकृष्ण का परमेश्वर रूप दिखाया गया है।

इसी प्रकार, युद्ध क्षेत्र में भीष्म श्री कृष्ण को उनकी शस्त्र ना उठाने की प्रतिज्ञा को चुनौती देते हुए जब अर्जुन पर भीषण बाण वर्षा करते हैं तो श्रीकृष्ण रथ के पहिए को चक्र की तरह घूमाते हुए आक्रामक मुद्रा बनाकर भीष्म के हृदय में अपने विष्णु रूप की छवि अंकित करते हैं और साथ ही भीषम को उनकी वास्तविक अंतः स्थिति का भी दिग्दर्शन इस रूप में करा देते हैं कि जहाँ भीष्म आपनी प्रतिज्ञा के अहंकार में डूबकर दुष्ट और अन्यायी दुर्योधन के पक्ष में खड़े हैं, वहीं उनके समक्ष विष्णु रूप श्रीकृष्ण मर्यादाओं को भी तोड़ते हैं तो केवल धर्म चक्र प्रवर्तन के लिए।   यही आत्म तत्व की जगत में क्रियाशीलता है।

युद्ध के अनेक प्रसंगों में श्रीकृष्ण, धर्म के उपरोक्त स्वरूप का ही बार-बार प्रतिपादन करते हैं। अभिमन्यु-वध में कौरव पक्ष के सभी महारथियों का अधर्माचरण, बेशर्मी और बेहयापन पूर्णतः प्रकट हो जाने पर श्रीकृष्ण जयद्रथ, भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, दुर्योधन का वध बाह्य धर्माचरण को तोड़कर भी करवाते हैं। ऐसे सभी प्रसंगों में उनकी दृष्टि धर्म सत्ता की स्थापना पर ही है।

महाभारत में इंगित श्रीकृष्ण की कार्यशैली के एक विशेष पक्ष पर भी हम ध्यान दें। युद्ध लड़ने के निर्णय से लेकर युद्ध के अंत तक उनकी निर्णायक भूमिका प्रत्यक्ष है किंतु उन्होंने यहाँ स्वयं किसी से युद्ध नहीं किया। वे केवल सार्थी और प्रेरक हैं। जीवन में आत्मा की इसी भूमिका को श्रीकृष्ण ने गीता में बार-बार बतलाया है। अतः हम कह सकते हैं कि महाभारत में श्रीकृष्ण को आत्म-तत्व के मूर्तिमान रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

श्री कृष्ण जीवन का संपूर्ण सत्व गीता में

गीता में श्रीकृष्ण ने अपना वास्तविक परिचय अविनाशी आत्मा-तत्व के रूप में ' अहं अव्ययं' पद (4.1) द्वारा प्रारंभ में ही स्पष्टता से दिया है और अर्जुन के बहाने हमें आत्म-विकास की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा प्रदान की है। आत्म जागृति मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, इस नैसर्गिक नियम का उद्घाटन उन्होंने प्रकृति की क्रियाओं में विकास तत्व का सविस्तार दर्शन करा कर किया है। मनुष्य समग्र (जड़-चेतन) प्रकृति का एक अंश है और इसलिए प्रकृति के समग्र विकास (जड़ -जीवन-आत्म-सर्वात्म की ओर विकास) के नियम से वह बंधा है और इसके विपरीत चलने की कोशिश ही उसके दुखों का कारण बनती है। संपूर्ण प्रकृति में परस्पर सजीवन (symbiosis) नियम की व्याख्या 'यज्ञ' के रूप द्वारा प्रस्तुत करके हमें स्वार्थ में जीवन से ऊपर उठने की प्रेरणा दी गई है। ऐसा हम जगत को परमेश्वर के व्यक्त रूप में देख कर मन-वचन-कर्म से इसकी सेवा में यथाशक्ति अपने व्यक्तित्व को समर्पित करके कह सकते हैं। गीता में श्रीकृष्ण के वचनों का सार यही।

सारांश

श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक महापुरुष अवश्य रहे हैं किंतु महाभारत और पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण का स्वरूप ऐतिहासिक कम मिथकीय अधिक है। उन्हें पुराण- पुरुष के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य मात्र यही हो सकता है कि हम इन ग्रंथों से आध्यात्मिक दिशाबोध प्राप्त कर सकें। इसलिए आवश्यकता मिथक को स्वीकार करने या उस पर श्रद्धा लाने की नहीं है, वरन आवश्यकता इस श्रद्धा की है कि यह मिथक जिन आध्यात्मिक संदेशों को प्रकाशित करने के लिए रचे गए हैं हम उन्हें समझने का और जीवन में यथाशक्ति उतारने का सतत प्रयास करें।

◆ ◆ ◆

श्रीकृष्ण कथा एक आध्यात्मिक अनुशीलन

श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन करने वाले ग्रंथों में मुख्य हैं श्रीमद भागवत पुराण और महाभारत। महाभारत में मूल रूप से श्रीकृष्ण के युगांतरकारी कार्यों का वर्णन है। यह इतिहास का आंशिक आध्यात्मिक रूपांतर प्रतीत होता है। दूसरी ओर, भागवत पुराण कृष्ण को परमेश्वर के अवतार के रूप में प्रस्तुत करती है। यह घोषणा करती है कि उनकी लीलाओं का सतत चिंतन करने से व्यक्ति परमेश्वर की अनन्य भक्ति प्राप्त कर सकता है। स्पष्ट ही यह एक पूर्णतः अध्यात्मिक चित्रण है। इनके सूत्र समझना हमारे लिए उपादेय होगा। श्रीकृष्ण गाथा के साथ उनके माता-पिता एवं जेष्ठ भ्राता बलराम की गाथा का भी अध्ययन करना महत्वपूर्ण होगा। बलराम का वर्णन दोनों ग्रंथों में उनकी अपनी-अपनी विशिष्ट दृष्टि के अनुरूप ही हुआ है। महाभारत जहाँ उन्हें इतिहास की दृष्टि से प्रस्तुत करता है, वही भागवत उन्हें परमेश्वर की एक सहयोगी देवीय शक्ति के रूप में वर्णित करती है।

जन्म कथा

श्रीकृष्ण बलराम की जन्म गाथा का वर्णन भागवत में विस्तार से है, महाभारत में केवल संदर्भ रूप में। श्रीकृष्ण और बलराम दोनों की गाथाएं रहस्य और रोमांच से युक्त है। जैसा की सर्वविदित है श्रीकृष्ण का जन्म कंस के कारागृह में वसुदेव- देवकी की आठवीं संतान के रूप में भाद्र माह कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मध्यरात्रि में मथुरा में उस समय हुआ था जबकि घनघोर वर्षा हो रही थी और यमुना में बाढ़ थी। जन्म के तुरंत बाद कारागृह के ताले अपने आप खुल गए, वसुदेवजी की बेड़ियाँ खुल गई, पहरेदार गहरी निद्रा में चले गये, वसुदेवजी ईश्वर प्रेरणा से नवजात शिशु को जमुना पार कर, गोकुल ले जाकर अपने मित्र नंदजी के यहाँ उसी समय यशोदा को जन्मी कन्या से बदलकर वापस मथुरा जेल की कोठरी में लौट आए, सारी स्थितियां पूर्ववत हो गई और ना तो पहरेदारों को कुछ पता चला और ना ही नंद-यशोदा को। इसी

प्रकार सातवीं संतान बलराम के जन्म की गाथा भी अति विचित्र है। वसुदेव की एक पत्नी देवकी ने उन्हें गर्भ में धारण किया किंतु जन्म दूसरी पत्नी रोहिणि की कोख से हुआ, जो उस समय नन्दजी के यहाँ रह रही थीं। इस वर्णन को लोग आज 'उधार-कोख तकनीक' के प्राचीन भारत के गौरवशाली उदाहरण के रूप में भले ही प्रस्तुत करें किंतु आध्यात्मिक ग्रंथ के वर्णन में हम अध्यात्म के सूत्र तलाशेंगे। इस हेतु हमें कथा के प्रतीकात्मक अर्थ खोजने का प्रयास करना होगा। किंतु साथ ही प्रतीकार्थ के साथ बहुधा जुड़ जाने वाली एक विडंबना- इतिहास को नकार देने (अथवा इसी प्रकार के अन्य विषयों के तथ्यों को निरर्थक कल्पना मानकर उनकी अवहेलना करने) की प्रवृत्ति से हमें सावधान भी रहना होगा।

प्रतीकार्थ करने का अर्थ इतिहास को नकारना नहीं

श्री कृष्ण जैसे ऐतिहासिक पात्रों की आध्यात्मिक विवेचना से हमारे श्रद्धा- संस्कारित मन में बहुधा उठ खड़े होने वाले उपरोक्त भ्रम और उसके निवारण पर कुछ चर्चा कर लेना उपयुक्त होगा ताकि अध्यात्म मार्ग पर बढ़ने में विवेचना और श्रद्धा परस्पर विरोधी ना होते हुए दोनों ही हमारे लिए सहायक बने। श्रद्धा से हमारा मन अध्यात्मिक होता है तो प्रतीक विवेचना से बुद्धि अध्यात्मिक हो जाती है। वस्तुतः हमारे सभी प्राचीन ग्रंथों में प्रतीकात्मक वर्णनओं का जो इतना प्रयोग किया गया है उसका उद्देश्य बुद्धि में अध्यात्म बिठाना ही है। हमारी संस्कृति का मूल स्वर अध्यात्म रहा है। यहां आध्यात्म को इतना महत्व दिया गया है कि तत्कालीन साहित्य में ना केवल इतिहास, वरन बौद्धिक क्षेत्र के हर प्रकार के ज्ञान का आध्यात्मिक रूपांतरण, घटनाओं को पौराणिक (Mythological) स्वरूप देकर किया गया है। अनगिनत कथाएं हैं जिनमें इतिहास के अतिरिक्त भूगोल (उधारणार्थ हिमालय पर्वत की पुत्री से भगवान शिव के विवाह की गाथा), खगोल(ध्रुव कथा), अर्थशास्त्र तथा चिकित्सा शास्त्र (समुद्र मंथन से देवी लक्ष्मी और धन्वंतरी देव का प्राकटय), सृष्टि उत्पत्ति-विज्ञान आदि की घटनाओं को प्रतीकों की भाषा में आध्यात्मिक प्रतीकों के रूप में करते हैं तो इसका अर्थ इतिहास को नकारना नहीं है, वरन हमारे मनीषियों ने जिस इतिहास रूप दूध को कथा रूप दही बनाकर हमें दिया है उसे विचार मंथन द्वारा आध्यात्म का मक्खन प्राप्त करने का प्रयास करना है। किंतु दूध-दही-मक्खन के इस उदाहरण का यह तात्पर्य भी नहीं कि मक्खन ही सर्वोत्तम भोज्य है। वस्तुतः तीनों ही पौष्टिक है और व्यक्ति की रुची और उसकी प्रवृत्ति के अनुरूप उपयोग करने पर सभी हितकारी है। कृष्ण कथा के आध्यात्मिक प्रतीकार्थ पर चर्चा प्रारंभ

करने से पूर्व आध्यात्म से हमारा क्या तात्पर्य है इस पर एक दृष्टि डाल लेना उपयुक्त होगा।

आध्यात्म का अर्थ और स्वरूप

आध्यात्म शब्द की व्युत्पत्ति, अध्यात्म = अधि + आत्म , अनुसार अध्यात्म का अर्थ है अत्म से संबंधित, और आत्मा से यहाँ तात्पर्य है- जड़ प्रकृति से मुक्त चेतन तत्व। आत्मा शब्द का प्रयोग भी व्यक्ति अथवा समष्टि के संदर्भ से दो अर्थों में होता है - 1. व्यक्ति चेतना, और 2. समष्टि चेतना जिसे परम विशेषण लगाकर परमात्मा कहा जाता है। 'आत्मा' के इन दो अर्थों के अनुरूप आत्मा के भी दो स्वरूप हैं- 1. व्यक्ति परक अध्यात्म अर्थात व्यक्ति में क्रियाशील चेतना के स्वरूप (प्राण, मन, बुद्धि, अनुभूति, आदि शक्तियों) का दर्शन, और 2. समष्टिपरक अध्यात्म अर्थात समष्टिगत शक्तियों (देवताओं) और सबके मूल स्त्रोत परमात्मा का दर्शन। आध्यात्मिक यात्रा के प्रारंभिक चरणों में प्रथम प्रकार का दर्शन अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि इस साधना में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की अशुद्धियों का ज्ञान हो जाने पर उनसे मुक्त होना संभव हो जाता है। यह अशुद्धियां ही आत्म तत्व की अनुभूति में प्रमुख बाधाएं हैं जिनसे हमें मुक्त होना है। इस हेतु से इस लेख में हम कृष्ण कथा का अध्ययन व्यक्तिपरक अध्यात्म के रूप में करने का प्रयास करेंगे।

कृष्ण और उनके तीन माता-पिता

प्रकृति त्रिगुणात्मक है। उसके तीन गुण हैं - सत, रज और तम। चेतन तत्व जब प्रकृति में अभिव्यक्त होता है तो प्रकृति के गुणों के अनुरूप उसके भी तीन रूप हो जाते हैं। समष्टि स्तर पर क्रियाशील इस त्रिगुणी चेतना को ब्रह्मा, विष्णु, महेश (रूद्र) कहा गया है जो क्रमशः जगत की उत्पत्ति, पालन और संघार के देवता हैं। व्यक्ति स्तर पर उसी चेतन सत्ता का अंश जीवात्मा प्रकृति-पुरुष रूप माता-पिता से शरीर और जीवन प्राप्त करता है (गीता 14.3) अर्थात जीवात्मा के रूप में शुद्ध चेतन प्रकृति के गुणों से आवृत हो जाता है। प्रारंभ में आवरण घनीभूत तम का होता है जो धीरे-धीरे रजोगुणी तथा सतोगुणी होते हुए अंत में सर्व कल्याणक शुद्ध चेतन जीवात्मा के रूप में अभिव्यक्त होता है। कथा में व्यक्ति चेतन की इन चार स्थितियों को व्यक्तिक्रम (उलटे-क्रम) से कृष्ण और उनके माता-पिता वसुदेव- देवकी, नंद-यशोदा और कंस-फूतना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। माता-पिता के ये तीन युगम क्रमशः उत्पत्ति, पालन और संहार के गुणों को ही अभिव्यक्त कर रहे हैं।

जन्म देने वाले माता-पिता देवकी-वसुदेव हैं। सात्विक गुणो वाले प्रकृति-पुरुष को निरूपित करते हैं। दैविक (सात्विक) गुणों से युक्त बताने हेतु उनके नाम भी देव शब्द से उक्त है। उनके पूर्व जन्म की कथायें भी सात्विक गुणों की उत्तरोत्तर गहरी प्राप्ति को दर्शाती है। पूर्व के दो जन्मों में वे क्रमशः प्रश्नि-सूतपा (प्रश्नि= जिज्ञासु, सूतपा=कड़ा परिश्रम) तथा अदिति-कश्यप थे। कश्यप (कश्य+प) का एक अर्थ है अज्ञान का पान कर जाने वाली अर्थात उसे नष्ट करने की सामर्थ्य वाली चेतना। एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार (कश्यप=क+श्ये+प, क= आत्मा/अग्नि/ चेतन शक्ति, श्ये=बर्फ के समान जमी हुई या अक्रिय, प = सुरक्षित) कश्यप का अर्थ है चेतन शक्ति की अक्रिय अवस्था (पुराणों में कश्यप की 13 पत्नियें बताई गई है जो प्रकृति की 13 विभिन्न अवस्थाओं का और प्रत्येक के साथ कश्यप रूप चेतना के विभिन्न मात्रा में जागृत (क्रियाशील) हुए अर्थात अभिव्यक्त हुए रूपों का निरूपण करते हैं। (दृष्टव्य राधा गुप्ता, विपिन कुमार का ब्लॉग) अदिति भी प्रकृति का एक रूपांतरित उच्च स्वरूप है। कृष्ण कथा में कश्यप-अतिथि द्वारा तप करके भगवान को पुत्र रूप में पाने का वरदान प्राप्त करने का जो उल्लेख है उसका भावार्थ है कि उस रूप में आंशिक जमी हुई पुरुष-चेतना तप से द्रवीभूत होकर और तद्नुरूप प्रकृति भी रूपांतरित होकर अब वसुदेव-देवकी के रूप में परब्रह्म को 16 कला वाले (16 दिव्य गुणों से युक्त) अंश रूप कृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त करते हैं।

नंद-यशोदा राजसिक गुणों से युक्त माता-पिता। वे बालकृष्ण का पालन-पोषण करते हैं और कृष्ण पुत्र रूप में उनको उनके भावों के अनुरूप भरपूर मानसिक आनंद प्रदान करते हैं।

तमस के मूर्त रूप कंस और पूतना भी श्रीकृष्ण के पितृ-मातृ सम ही हैं। कंस कृष्ण के मामा है अर्थात कृष्ण कंस के लिए पुत्र समान होते हुए भी वह उन्हें मार डालने का भरसक प्रयत्न करता है। वस्तुतः कंस देहासक्ति का ऐसा मूर्त रूप है जो मृत्यु के भय से अपनी आत्म-चेतना (कृष्ण) को नष्ट करना ही श्रेयस्कर समझता है। यहां इस आध्यात्मिक सत्य को रेखांकित किया गया है कि देहासक्ति (रूप कंस) और आत्म-भाव (रूप श्रीकृष्ण) परस्पर विरोधी भाव। (सत्तायें हैं) सर्वव्यापक आत्म-भाव रूप कृष्ण-चेतना जब जागृत होती है तो अज्ञान जनित देहासक्ति रूप कंस और मोह रूप उसकी सेविका पूतना का नाश हो जाता है।

हम देखते हैं कि भागवत की इस रूपक कथा में प्रकृति के और उसमें बंधी चेतना के सात्विक, राजसिक और तामसिक रूपों को तो भिन्न पात्रों के द्वारा निरूपित

किया गया है क्योंकि प्रकृति में अनेकत्व है, वह बहूरूपा है, किंतु इन विभिन्न पात्रों के पुत्र कृष्ण एक ही हैं। आत्म चेतना सभी में एक है, उसमें पृथकत्व नहीं है।

बड़े भाई बलराम

इनके आध्यात्मिक स्वरूप को पहचानने के लिए पहले इनसे संबंधित वर्णन के कुछ मुख्य बिंदुओं पर ध्यान देना उचित होगा।

इनकी जन्म कथा में दो माताओं के गर्भ में पलने का उल्लेख हुआ है। ये शेषावतार कहे गए हैं। खेत जोतने का हल इनका शस्त्र है जिसे वे हमेशा धारण किए रहते हैं और इसी कारण ये 'हलदर' नाम से भी जाने जाते हैं। ये वसुदेव- देवकी की सातवीं संतान है। (कृष्ण आठवीं) श्रीकृष्ण से भिन्न इनके व्यक्तित्व के कुछ गुणात्मक बिंदु इस प्रकार हैं -

श्रीकृष्ण के मित्र और शिष्य हैं उच्च गुणों से युक्त अर्जुन किंतु बलराम के मन में दुर्योधन के प्रति केवल इस कारण अनुराग था कि वह गदा युद्ध कला में उनका पटु शिष्य सिद्ध हुआ था। उसकी दुष्वृत्तियों की ओर उनका ध्यान कभी भी नहीं गया।वे तो बहन सुभद्रा का भी विवाह दुर्योधन के पुत्र से करना चाहते थे जबकि श्रीकृष्ण ने अर्जुन-सुभद्रा के प्रेम विवाह को बड़ी सूझबूझ से निर्विघ्न संपन्न करवाया। महाभारत के युद्ध में भी श्रीकृष्ण का पांडवों का सहायक बनना बलराम को जरा भी रास न आया और इसी कारण से युद्ध से पूर्व ही तीर्थ यात्रा पर निकल गए थे।

उपरोक्त बिंदुओं पर विचार करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि श्रीकृष्ण व्यक्ति की आत्म चेतना को अथवा उसके किसी उच्च स्तर को निरूपित करते हैं और बलराम उसकी प्रकृति अंश में क्रियाशील चेतना को।इनको जो शेष का अवतार कहा गया है उसका संकेत यह है कि यह व्यक्ति में आत्मस्तर पर जागृत हुई चेतना से बची हुई (शेष रही) अपरा प्रकृति में क्रियाशील चेतना शक्ति है।

पुराणों में शेष का जो चित्रांकन किया गया है वह इस विषय को और भी स्पष्टता प्रदान करता है। शेषनाग और भगवान विष्णु का वहां जो चित्रांकन है वह गीता, महाभारत आदि ग्रंथों में वर्णित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, प्रकृति-पुरुष, जड़-चेतन,अज्ञान-ज्ञान आदि सृष्टि के मूल में दो प्रकार की शक्तियों अथवा बलों के होने का वर्णन है। शेषनाग के अनेक फण भौतिक शक्ति/बलों के अनेक रूपों को निरूपित करते हैं और एक मुख्य (केंद्रीय) फण पर पृथ्वी रखे होने का वर्णन गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा पृथ्वी का आकाश में टिका होना बतलाया गया है। उक्त चित्रांकन में प्रकृति को

‘शेष’ और पुरुष तत्व को विष्णु के रूप में निरूपित किया गया है और श्रीकृष्ण के रूप में मानवीकृत किया गया है। यह विशिष्ट स्तर क्या है इसे बलराम को वसुदेव-देवकी की सातवीं संतान (और शुद्ध जीवात्म रूप कृष्ण को आठवीं संतान) बतलाकर प्रदर्शित किया गया है।

सातवें तत्व को समझने के लिए सृष्टि उत्पत्ति के संपूर्ण प्रकरण पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना हमारे लिए उचित होगा। पुराणों में वर्णन है कि जब परमात्मा को एक से अनेक होने की इच्छा हुई तो प्रथम एक ‘अंड’ का निर्माण हुआ जिसके विस्फोटित होने पर महतत्व और पश्चात त्रिगुणात्मक अहंकार का निर्माण हुआ। उनसे फिर प्रकृति के सात तत्व (पंचमहाभूत, मन और बुद्धि) और जड़-चेतन संपूर्ण जगत का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ‘अंड’ को कृष्ण का विवर (ब्लैक होल), महत्तत्व को अति घनत्व वाली उच्च दबाव युक्त ऊर्जा, और तमस अहंकार को जड़ पदार्थ के प्रारंभिक कणों के रूप में समझा जा सकता है। इन जड़ पदार्थों के कणों का एक सर्वभौम गुण संकर्षण बल (gravitational force) भी प्रकट हुआ। ऐसा मानना उपयुक्त प्रतीत होता है कि भौतिक प्रकृति के इस प्रारंभिक रूप में पुरुष तत्व ने अपने आप को इस संकर्षण बल के रूप में ही अभिव्यक्त किया है। आगे प्रकृति का सात तत्वों में जो क्रमिक रूपांतरण हुआ उसकी प्रेरक शक्ति भी उस सर्वव्यापी चेतन शक्ति का ही कार्य था और वही शक्ति इन तत्वों के गुणों के रूप में प्रकट (अभिव्यक्त) हुई है। (द्दष्टव्य: गीता 7.10, महाभारत, शांति पर्व, 207.8 से 12) वेदांत में कहा भी गया है कि परमात्मा चेतन शक्ति का अंश प्रकृति के उक्त रूप में प्रवेश करके उनका रूपांतरण भी करता है और रूपांतरित प्रकृति-अंश में वही नए गुणों के रूप में अभिव्यक्त भी होता है। यह प्रक्रिया ही जगत और जीव में क्रमिक विकास संपन्न करती है। सातवें तत्व बुद्धि में जो चेतन शक्ति क्रियाशील है, उसका ही परिचय कथा में बलराम के रूप में कराया गया। चेतन शक्ति का यह सातवां रूप प्रथम रूप संकर्षण बल का ही रूपांतर है इस बात को प्रकाशित करने के लिए ही बलराम को संकर्षण नाम से भी संबोधित किया गया है।

दो माताओं का रुपक भी उपरोक्त स्वरूप के एक और पक्ष को प्रकाशित करता है। दो माताएं हैं देवकी और रोहिणी। शब्दार्थ की द्दष्टि से देवकी है देवत्व की पोषक परा प्रकृति और रोहिणी है, बीज का अंकुरित करने वाली- पूर्व संचित संस्कारों का पोषण करने वाली- अपरा प्रकृति। रोहिणी शब्द की धातु रूह=बीज का अंकुरित होकर बढ़ाना, इसी अर्थ का संकेत करती है। दोनों माताओं ने बलराम रुप बीज को गर्भ में पोषण प्रदान किया है; दूसरे शब्दों में, बलराम को अर्थात व्यक्ति को प्राप्त हुए बुद्धि

रूपी यंत्र में क्रियाशील चेतन शक्ति को दोनों प्रकृति पोषण प्रदान करती है-परा प्रकृति उसे देवत्व की ओर बढ़ाने का प्रयास करती है और अपरा प्रकृति उसके पूर्व संस्कारों को पुष्ट करती है। श्री अरविंद की शब्दावली में यह दोनों बल ऊर्ध्वगामी(विकास) (vartical evolution) और विस्तार(horizontal evolution) की दिशा में कार्य करते हैं। कृष्ण चेतना रूप आत्म तत्व के जागृत हो जाने पर व्यक्ति में अपरा प्रकृति का बल निष्प्रभावी हो जाता है। कृष्ण यद्धपि बलराम को अग्रज के रूप में पूर्ण सम्मान देते हैं किंतु घटनाओं की दिशा श्रीकृष्ण ही तय करते हैं।

बलराम का शस्त्र के रूप में हल धारण करना उनकी उपरोक्त पहचान को ही रेखांकित करता है। हल् से खेत जोतने की प्रक्रिया को यहां मस्तिष्क में विचार की प्रक्रिया का संकेत देने के लिए रूपांकित किया गया है। जब व्यक्ति किसी विषय पर चिंतन-मनन करता है तो मस्तिष्क में उसकी छाप कुछ उसी प्रकार अंकित होती है जिस प्रकार ऑडियो टेप पर आवाज या वीडियो टेप पर चित्र अंकित होता है। आज हम जानते हैं कि मानव जब विचार करता है तो न्यूरॉनओं में नए संयोजन बनते हैं। गहन विचार और बार-बार उसी विचार की पुनरावृत्ति से यह संयोजन कुंड या हल रेखा की भांति स्थायित्व ग्रहण करने लगते हैं। इसीलिए विचार की इस प्रक्रिया को खेत जोतने वाले हल और विचार स्तर पर क्रियाशील चेतना को हलधर(बलराम) के रूप में चित्रित किया गया है।

सारांश- यह है कि इस कथा में बलराम और श्रीकृष्ण के रूप में व्यक्ति चेतना के बौद्धिक और आत्मिक स्तरों को मूर्तिमान किया गया है। कृष्ण चेतना हम सब में उपस्थित तो है किंतु अधिकांश में बलवती नहीं है। या तो मन-बुद्धि की आसुरी वृत्तियां प्रभावी होकर जीवन का संचालन करती है, अथवा बाहर समाज में क्रियाशील ऐसे बलों के सामने हार मानकर हमारी कमजोर चेतना निष्क्रिय और उदासीन हो जाती है। वह बलवान कैसे बन सकती है इसे भागवान में गोकुल, ब्रज और मथुरा में बालक कृष्ण द्वारा राक्षसों और असुरों के नाश करने की कहानियों द्वारा चित्रित किया गया है। इन कहानियों का विवेचन एक स्वतंत्र लेख का ही विषय होगा।

◆ ◆ ◆